पूरा बेंच

डी. एस. तेवतिया, बी. एस. ढिल्लन और गुरनाम सिंह, जे. जे.

हरियाणा राज्य,-आवेदक-अपीलार्थी
बनाम
महल सिंह और एक और,-उत्तरदाता।

1977 की आपराधिक विविध संख्या 4766-एम
12 अप्रैल, 1978.

अभिनिर्धारित किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 173 की उपधारा (5) के संदर्भ में, एक रिपोर्ट को उसमें निर्दिष्ट बयानों और दस्तावेजों के बिना 'पुलिस रिपोर्ट' होने की परिकल्पना की गई है। यदि रिपोर्ट किसी ऐसे मामले के संबंध में है जिस पर संहिता की धारा 170 लागू होती है, तो पुलिस अधिकारी पर यह कर्तव्य डाला जाता है कि वह धारा 173 की उप-धारा (5) में निर्दिष्ट बयानों और दस्तावेजों को अपनी रिपोर्ट के साथ संलग्न करे। चूँकि किसी रिपोर्ट को 'पुलिस रिपोर्ट' होने के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए केवल ऐसे तथ्यों को शामिल करना आवश्यक है जो धारा 173 की उपधारा (2) में उल्लिखित हैं, इसलिए यदि एक बार यह पाया जाता है कि पुलिस रिपोर्ट में वे सभी तथ्य शामिल हैं, तो जहां तक जांच का संबंध है, उसे पूरा माना जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'अन्वेषण' की परिभाषा अपने दायरे के भीतर साक्ष्य के संग्रह और जांच अधिकारी द्वारा राय के निर्माण की कल्पना करती है, लेकिन साक्ष्य के संग्रह में आवश्यक रूप से यह परिकल्पना नहीं की गई है कि जांच अधिकारी को उन गवाहों के बयान दर्ज करने चाहिए जिन्हें अभियोजन मामले को साबित करने के लिए उद्धृत किया जाना है या उन्हें विशेषज्ञों की रिपोर्ट प्राप्त करनी चाहिए जो साक्ष्य में स्वीकार्य हैं। वास्तव में, जांच अधिकारी का यह दायित्व नहीं है कि वह गवाहों के बयानों को लिखित रूप में कम करे क्योंकि वह आरोप पत्र प्रस्तुत करते समय अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में गवाहों की सूची में केवल उनके नाम शामिल कर सकता है।
जहां तक अन्वेषण अधिकारी के कार्य के अन्वेषण भाग का संबंध है, यह

तब पूरा होता है जब वह संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) में विस्तृत सभी साक्ष्य और तथ्यों को एकत्र कर लेता है और इस प्रकार एकत्र किए गए साक्ष्य से वह संतुष्ट होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध मामला शुरू किया जाना चाहिए। भले ही जांच अधिकारी को विशेषज्ञ की रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई हो, जहां तक उसके साक्ष्य एकत्र करने के काम का संबंध है, वह उस समय समाप्त हो जाता है जब वह विशेषज्ञ की राय के लिए सामग्री भेजता है और संयोग से उसे गवाह के रूप में उद्धृत करता है यदि वह अपनी गवाही पर भरोसा करता है। इसी प्रकार, आरोप-पत्र अपेक्षित प्रकार की पुलिस रिपोर्ट होगी, भले ही धारा 161 (3) के अधीन गवाहों के बयान या तो परिकल्पित रूप से या अनजाने में रिपोर्ट के साथ संलग्न नहीं किए गए हों और केवल उसी कारण से मामले की जांच को अधूरा नहीं माना जाएगा, इस प्रकार अभियुक्त को संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) के परन्तुक को देखते हुए जमानत पर रिहाई का दावा करने का अधिकार होगा, यदि उसकी नजरबंदी साठ दिनों से अधिक हो गई थी।

(Para 13, 14, 15)

अभिनिर्धारित किया गया कि संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक का उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना है कि किसी अभियुक्त को जांच के दौरान साठ दिनों से अधिक समय तक निरोध में नहीं रखा गया है और उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि जांच पूरी नहीं हुई है और अभियुक्त के विरुद्ध, जैसा भी मामला हो, जांच या मुकदमा शुरू नहीं किया गया है, तो अभियुक्त को मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर रिहा किया जाना है, क्योंकि साठ दिनों के बाद मजिस्ट्रेट को जांच के दौरान उसे न्यायिक हिरासत में भेजने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यदि मजिस्ट्रेट साठ दिनों की अवधि की समाप्ति के बाद अपराध का कानूनी रूप से संज्ञान नहीं ले सकता है, तो उसके पास आरोपी की रिहाई का आदेश देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है; लेकिन जहां मजिस्ट्रेट कानूनी रूप से अपराध का संज्ञान ले सकता है और जांच या मुकदमे से शुरुआत कर सकता है, तो वह आरोपी को जांच या मुकदमे का सामना करने के लिए एक विचाराधीन के

रूप में हिरासत में लेने की अधिकारिता प्राप्त करता है, जैसा कि मामला हो सकता है, यदि यह आवश्यक माना जाता है, और आरोपी को धारा 309 के प्रावधानों के अनुसार न्यायिक हिरासत में भेज दिया जा सकता है।

(Para 17)

माननीय न्यायमूर्ति भूपिंदर सिंह ढिल्लों की एकल पीठ द्वारा मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को भेजा गया मामला। अब माननीय न्यायमूर्ति डी एस तेवतिया, माननीय न्यायमूर्ति भोपिंडर सिंह ढिल्लों और माननीय न्यायमूर्ति वर्णम सिंह की पूर्ण पीठ ने अंततः 12 अप्रैल, 1978 को गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला किया।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 (2) के अधीन आवेदन, यह प्रार्थना करते हुए कि निम्न न्यायालय के आदेश को अपास्त किया जाए और याचिका की अनुमति दी जाए और अभियुक्त-प्रत्यर्थियों को मामले की सुनवाई के दौरान अभिरक्षा के लिए प्रतिबद्ध किया जाए।

याचिकाकर्ता की ओर से नौबत सिंह, डीएजी हरियाणा और एचएस गिल, डीए, हरियाणा ने पक्ष रखा।

के एल जग्गा, अधिवक्ता, बहादुर सिंह, जंग बहादुर सिंह की ओर से। प्रतिवादी की ओर से एच. एन. मेहतानी, डी. एस. बाली और के. डी. सिंह, अधिवक्ता।

JUDGMENT

(1) निर्धारण के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न आता है, जो 1977 की सभी पांच आपराधिक विविध याचिकाओं संख्या 4766-एम, 5812-एम और 6077-एम, और 1978 की 169-एम और 293-एम के लिए समान है, वह

यह है कि क्या किसी अपराध का अन्वेषण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (2) के संदर्भ में पूर्ण माना जाएगा (जिसे इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित किया गया है) हालांकि मामले की जांच करने वाले पुलिस अधिकारी को रासायनिक परीक्षक, सीरोलॉजिस्ट, बैलिस्टिक विशेषज्ञ या फिंगरप्रिंट विशेषज्ञ आदि जैसे विशेषज्ञों की रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई थी, जिनकी रिपोर्ट संहिता की धारा 293 के तहत कानूनी रूप से स्वीकार्य हैं, जिन्हें गवाह-बॉक्स में उक्त विशेषज्ञों द्वारा साबित किए बिना; और क्या उपरोक्त आरोप-पत्र को घटाने वाले दस्तावेज संहिता की धारा 190 में दर्ज किए जाने पर मजिस्ट्रेट को संज्ञान रिपोर्ट (जिसमें खुलासा किया गया है) लेने में सक्षम होंगे।

(2) उपर्युक्त प्रश्न दंड संख्या 4766-एम, 1977 (निर्देश की सुविधा के लिए इन याचिकाओं में अभियुक्त-याचिकाकर्ताओं को याचिकाकर्ता के रूप में संदर्भित किया गया है) को छोड़कर सभी याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए दावे के मद्देनजर विचार के लिए उत्पन्न होता है, जिसमें संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) के परन्तुक को देखते हुए जमानत पर उनकी रिहाई के लिए कहा गया है, जिसमें यह परिकल्पना की गई है कि जांच के दौरान एक मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त को साठ दिनों से अधिक की हिरासत, पुलिस या न्यायिक हिरासत में रखने के लिए सक्षम नहीं है। दूसरे शब्दों में, यदि इस अवधि में जांच पूरी नहीं होती है, तो मजिस्ट्रेट के पास ऐसे आरोपी को जमानत पर रिहा करने का आदेश देने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा।

उपर्युक्त कानूनी प्रश्न पर विचार शुरू करने से पहले, तथ्यों पर कुछ शब्द यहाँ बताए जा सकते हैं।

(3) 1977 की आपराधिक विविध याचिका संख्या 5812-एम और 6077-एम और 1978 की 169-एम और 293-एम में, याचिकाकर्ताओं ने संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक को ध्यान में रखते हुए जारी किए जाने के लिए इस न्यायालय में आवेदन किया है, जबकि 1977 की आपराधिक विविध याचिका संख्या 766-एम में अभियुक्त-

प्रत्यर्थियों को मामले में संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक के आवेदन को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा जारी किया गया था और राज्य ने उस आदेश को इस न्यायालय में चुनौती दी है। 1977 की आपराधिक विविध याचिका संख्या 5812-एम मेरे समक्ष सुनवाई के लिए आई और दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा हरि चंद और दूसरे बनाम राज्य में लिए गए दृष्टिकोण और ए. डी. कोशल, ए. सी. जे. द्वारा (2) कनहिया बनाम हरियाणा राज्य में लिए गए दृष्टिकोण के साथ सम्मानजनक असहमति पाते हुए, मैंने मामले को बड़ी पीठ को भेज दिया। उस संदर्भ आदेश के मद्देनजर, संबंधित न्यायाधीशों द्वारा दर्ज किए गए अलग-अलग आदेशों द्वारा अन्य आपराधिक विविध याचिकाओं को भी इसी तरह बड़ी पीठ को भेजा गया, जिन पर आपराधिक विविध याचिका सं. 1977 का 5812-एम, जिसे मैंने बड़ी पीठ को संदर्भित किया था और इस तरह इन याचिकाओं को हमारे सामने रखा गया है। इसलिए, सभी पाँच याचिकाओं के लिए एक सामान्य निर्णय प्रस्तावित किया गया है।

(4) यह विवाद में नहीं है कि आरोप-पत्र, जिसे अभियुक्त की ओर से 'अपूर्ण आरोप-पत्र' कहा जा रहा है, सभी मामलों में मजिस्ट्रेटों को प्रस्तुत किया गया था; गिरफ्तारी की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर अच्छी तरह से विचाराधीन अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार। यह भी विवाद में नहीं है कि एक या दूसरे प्रकार के विशेषज्ञ की रिपोर्ट या तो प्रस्तुत नहीं की गई थी या इन सभी मामलों में अभियुक्त-याचिकाकर्ताओं की गिरफ्तारी की तारीख से साठ दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद प्रस्तुत की गई थी।

(5) इस प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं है कि गिरफ्तार किए जाने पर अपराध करने के आरोपी व्यक्ति का निरोध अपराध की तीन श्रेणियों (1) जांच के दौरान निरोध), (2) जांच और मुकदमे के उद्देश्य से विचाराधीन कैदी के रूप में निरोध, और (3) कारावास की कोई सजा दिए जाने पर दोषसिद्धि के बाद सजा भुगतने के लिए निरोध में आएगा।

(6) संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) का उपबंध इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि अपराध की जांच के दौरान किसी अभियुक्त को साठ दिनों की अवधि से अधिक हिरासत में नहीं रखा जा सकता है।

यदि इस अवधि के दौरान जांच पूरी नहीं होती है, तो मजिस्ट्रेट को आरोपी को आगे हिरासत में लेने के लिए रिमांड करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, जब तक कि उसने अपराध का संज्ञान नहीं लिया था, जिस मामले में वह जांच या मुकदमे के उद्देश्य से आरोपी की रिमांड का आदेश दे सकता था, जैसा भी मामला हो। इसलिए, विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि जांच को कब पूर्ण माना जा सकता है।

(7) 'अन्वेषण' पद को संहिता की धारा 2 (ज) द्वारा निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया हैः

(ज) 'अन्वेषण' में किसी लोक अधिकारी द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति (मजिस्ट्रेट के अतिरिक्त) द्वारा, जो इस निमित्त मजिस्ट्रेट द्वारा प्राधिकृत है, साक्ष्य के संग्रहण के लिए इस संहिता के अधीन की गई सभी कार्यवाहियां सम्मिलित हैं।

संहिता की धारा 173 में मजिस्ट्रेट को अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से जांच पूरी होने के बाद एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने की परिकल्पना की गई है।

संहिता की धारा 190 में अपराध का संज्ञान लेने के तीन अलग-अलग तरीके निर्धारित किए गए हैं। इसके प्रासंगिक भाग में लिखा हैः

(1) इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रथम श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन इस निमित्त विशेष रूप से सशक्त द्वितीय श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगाः -

(क) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त करने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं;
(ख) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर;
(ग) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, या उसकी अपनी जानकारी पर, कि ऐसा अपराध किया गया है।

(8) यह संहिता की धारा 190 की उपधारा (1) का खंड (ख) है, जिसमें मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लेने की परिकल्पना की गई है। 'पुलिस रिपोर्ट' अभिव्यक्ति को संहिता की धारा 2 (आर) द्वारा निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैः

"इस संहिता में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो-'(र)' पुलिस रिपोर्ट 'से किसी पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 173 की उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट को अग्रेषित रिपोर्ट अभिप्रेत है।

ऊपर देखी गई 'पुलिस रिपोर्ट' की परिभाषा उस रिपोर्ट की पहचान एक 'पुलिस रिपोर्ट' के रूप में करती है जिसे पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 173 की उप-धारा (2) के तहत मजिस्ट्रेट को भेजा जाता है।

(9) अभियुक्त-याचिकाकर्ताओं की ओर से लिया गया रुख यह है कि एक रिपोर्ट संहिता की धारा 173 (2) के संदर्भ में केवल तभी 'पुलिस रिपोर्ट' होगी जब वह ऐसे दस्तावेजों और बयानों के साथ हो जो संहिता की धारा 173 की उपधारा (5) में निर्दिष्ट हैं। इस तर्क को हरि चंद के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले और ए. डी. कोशल, ए. सी. जे. के अलावा सुरेश सिंह बनाम राज्य और अन्य मामलों में पटना उच्च न्यायालय के एक खंड पीठ के फैसले के साथ बनाए रखने की मांग

की गई है।

(10) प्रश्न से संबंधित विभिन्न प्रावधानों के महत्व पर विचार करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, मैं शुरू में उपरोक्त तीन निर्णयों पर विचार कर सकता हूं जिन पर अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से भरोसा किया गया है।

(11) कनहिया के मामले (ऊपर) में निष्कर्ष का कोई कारण नहीं दिया गया है।

(12) दिल्ली उच्च न्यायालय और पटना उच्च न्यायालय के दो निर्णयों में- विद्वान न्यायाधीशों ने इस धारणा पर आगे बढ़ना शुरू किया था कि पुलिस रिपोर्ट, जिसे पुलिस की भाषा में 'चालान' कहा जाता है, स्वीकार्य रूप से अधूरी थी। चालान अधूरा क्यों था, इसका उल्लेख नहीं किया गया है। जाहिर है, संहिता में किसी भी अंतरिम रिपोर्ट की परिकल्पना नहीं की गई है, लेकिन इसमें एक 'पुलिस रिपोर्ट' की परिकल्पना की गई है जो एक मजिस्ट्रेट को अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम बना सकती है। विद्वान न्यायाधीशों ने इस प्रश्न पर विचार किए बिना कि पुलिस चालान को अधूरा चालान क्यों कहा गया, यह मान लिया कि मामले की जांच पूरी नहीं हो सकती थी क्योंकि पुलिस रिपोर्ट अधूरी थी।

इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि जिसे 'पुलिस रिपोर्ट' के रूप में वर्णित करने की मांग की गई है, वह 'पुलिस रिपोर्ट' नहीं है, क्योंकि पुलिस रिपोर्ट केवल जांच पूरी होने पर ही प्रस्तुत की जा सकती है, लेकिन फिर यह कहने से बहुत दूर है कि भले ही जांच पूरी होने के बाद मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, उसे 'पुलिस रिपोर्ट' नहीं माना जाएगा यदि उसमें ऐसे बयान और दस्तावेज शामिल नहीं हैं जो संहिता की धारा 173 की उप-धारा (5एफ) में निर्दिष्ट हैं।

(13) संहिता की धारा 173 की उपधारा (5) के शब्दों में, एक रिपोर्ट

को उसमें निर्दिष्ट बयानों और दस्तावेजों के बिना 'पुलिस रिपोर्ट' होने की परिकल्पना की गई है। इसमें केवल यह परिकल्पना की गई है कि यदि रिपोर्ट किसी मामले के संबंध में है, जिस पर संहिता की धारा 170 लागू होती है, तो पुलिस अधिकारी को अपनी रिपोर्ट के साथ धारा 173 की उप धारा (5) में निर्दिष्ट बयानों और दस्तावेजों को टैग करने का कर्तव्य दिया जाता है।

(14) चूंकि एक रिपोर्ट को 'पुलिस रिपोर्ट' होने के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए केवल ऐसे तथ्यों को शामिल करना आवश्यक है जो धारा 173 की उपधारा (2) में उल्लिखित हैं, इसलिए यदि एक बार यह पाया जाता है कि पुलिस रिपोर्ट में वे सभी तथ्य शामिल हैं, तो जहां तक जांच का संबंध है, उसे पूरा माना जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के लिए हमें तारा सिंह बनाम राज्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से आधिकारिक समर्थन प्राप्त होता है। वह एक ऐसा मामला था जिसमें आरोपी को 30 सितंबर को गिरफ्तार किया गया था, उसी दिन उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था। 1 अक्टूबर को पुलिस को 2 अक्टूबर तक की पुलिस रिमांड दी गई थी। अभियुक्त को 3 अक्टूबर को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया, जिस तारीख को पुलिस ने मजिस्ट्रेट को 2 अक्टूबर, 1949 का 'अधूरा चालान' सौंपा और अभियोजन पक्ष के कुछ गवाहों को भी पेश किया। इस प्रकार पेश किए गए गवाहों में ऐसे गवाह भी थे जिनके बारे में कहा जाता था कि वे इस घटना के गवाह थे। मजिस्ट्रेट ने उन गवाहों से पूछताछ की और उनके बयान दर्ज किए, हालांकि उस समय आरोपी का प्रतिनिधित्व किसी वकील द्वारा नहीं किया गया था। 5 अक्टूबर को पुलिस ने 'पूर्ण चालान' किया और 19 तारीख को पूरक चालान किया। मजिस्ट्रेट ने आरोपी को 12 नवंबर, 1949 को मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध किया। अभियुक्त की ओर से पहली बार में यह तर्क दिया गया था कि 3 अक्टूबर को मजिस्ट्रेट के पास मामले का संज्ञान लेने की कोई शक्ति नहीं थी। यह तर्क दिया गया कि किसी अपराध का संज्ञान केवल उस प्रकार की पुलिस रिपोर्ट पर लिया जा सकता है जिसकी परिकल्पना पुरानी संहिता की धारा 190 की उपधारा (1) के खंड (ख) में की गई है। यह आग्रह किया गया था कि पुरानी संहिता की धारा 173 (1) के उपबंधों के बल पर, जो निम्नलिखित शर्तों में है और जो नई संहिता की

धारा 173 की उपधारा (20) के उपबंधों के साथ भी आंशिक सामग्री है, पुलिस को अपूर्ण रिपोर्ट भेजने की अनुमति नहीं दी गई थी।

न्यायाधीश विवियन बोस, जिन्होंने पीठ के लिए राय दी, इस प्रश्न में गए बिना कि क्या पुलिस एक अधूरी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की हकदार थी या नहीं, उन्होंने कहा कि 2 अक्टूबर, 1949 की रिपोर्ट, जिसे पुलिस ने 'अपूर्ण चालान' के रूप में संदर्भित किया था, वास्तव में पुरानी संहिता की धारा 173 (1) के साथ पठित धारा 190 (1) (बी) के अर्थ के भीतर एक पूर्ण रिपोर्ट थी। उनके प्रभु पद के बारे में निम्नलिखित टिप्पणियां इस बिंदु पर शिक्षाप्रद हैंः "जब पुलिस ने 2 अक्टूबर, 1949 का अपना चालान तैयार किया और इसे 3 अक्टूबर को अदालत में प्रस्तुत किया, तो उन्होंने वास्तव में घटना की इंपीरियल सेरोलॉजिस्ट की रिपोर्ट और एक स्केच मानचित्र के ड्राइंग को छोड़कर अपनी जांच पूरी कर ली थी। मजिस्ट्रेट के लिए यह हमेशा अनुमेय है कि वह अतिरिक्त साक्ष्य ले सकता है जो चालान में नहीं दिया गया है।
इसलिए, केवल यह तथ्य कि 5 अक्टूबर को दूसरा चालान डाला गया था, जरूरी नहीं कि पहले चालान को दूषित कर दे। धारा 173 (1) (क) से केवल इतना अपेक्षित है कि जैसे ही संहिता के अध्याय 14 के अधीन पुलिस अन्वेषण पूरा हो जाता है, मजिस्ट्रेट को विहित प्रपत्र में एक प्रतिवेदन अग्रेषित किया जाना चाहिएः 'पक्षकारों के नाम, सूचना की प्रकृति और उन व्यक्तियों के नाम, जो मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होते हैं, निर्दिष्ट करना।' यह सब 2 अक्टूबर की रिपोर्ट में किया गया प्रतीत होता है जिसे पुलिस ने अपना अधूरा चालान कहा। 5 अक्टूबर के दूसरे चालान में नामित गवाह ऐसे गवाह नहीं थे जो 'मामले की परिस्थितियों से परिचित' थे। वे अन्य मामलों में केवल औपचारिक गवाह थे। 19 तारीख के पूरक चालान में भी ऐसा ही है। गवाहों के नाम हैं प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, अमृतसर, जिन्होंने मृत्यु घोषणा दर्ज की, और सहायक सिविल सर्जन। वे ऐसे गवाह नहीं हैं जो 'मामले की परिस्थितियों से परिचित' थे। तदनुसार, जिस चालान को पुलिस ने अपूर्ण चालान कहा था, वह वास्तव में उस प्रकार की एक पूर्ण रिपोर्ट थी जिस पर संहिता की धारा 173 (1) विचार करती है। इस तर्क में कोई बल नहीं है, और हमारा मानना है कि मजिस्ट्रेट ने मामले का उचित संज्ञान लिया।

तथापि, अभियुक्त-याचिकाकर्ताओं के विद्वत वकील ने तर्क दिया कि पुरानी संहिता में नई संहिता की धारा 173 की उपधारा (5) में अंतर्विष्ट उपबंध नहीं थे और इसलिए तारा सिंध के मामले (उपर्युक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अधिकार धारा 173 की उपधारा (5) की नई संहिता में निगमन द्वारा लाई गई परिवर्तित स्थिति के संदर्भ में लागू नहीं होगा। अभियुक्त-याचिकाकर्ताओं के विद्वत वकील ने इस तथ्य पर जोर दिया कि इसकी परिभाषा के संदर्भ में जांच को तब तक पूर्ण नहीं माना जाएगा जब तक कि पुलिस ने सभी साक्ष्य एकत्र नहीं किए थे और उस पर अपनी राय नहीं बनाई थी और चूंकि उन मामलों में, जहां विशेषज्ञ की रिपोर्ट का इंतजार किया गया था, जाहिर तौर पर यह नहीं कहा जा सकता था कि/सभी साक्ष्य एकत्र किए गए हैं, और न ही इसकी अनुपस्थिति में जांच अधिकारी राय बनाने की स्थिति में होगा। यह दिखाने के लिए कि उपरोक्त कदम जांच के आवश्यक तत्व हैं, न्यायमूर्ति जगन्नाधदास की निम्नलिखित टिप्पणियों पर भरोसा किया गया है, जिन्होंने एच. एन. ऋषभुद और एक अन्य बनाम दिल्ली राज्य (5) में पीठ के लिए निर्णय दिया था)
"यदि जांच पूरी होने पर पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि कोई पर्याप्त सबूत या उचित आधार नहीं है, तो वह संदिग्ध आरोपी को रिहा करने का निर्णय ले सकता है, यदि वह हिरासत में है, तो उसके बांड को निष्पादित करने पर। तथापि, यदि उसे यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य या उचित आधार है, तो उसे संहिता की धारा 170 के अधीन आवश्यक कदम उठाने हैं। किसी भी मामले में, जाँच पूरी होने पर उसे विभिन्न विवरण प्रस्तुत करने से निर्धारित में संहिता की धारा 173 के तहत मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'जांच' की परिभाषा अपने दायरे में जांच अधिकारी द्वारा साक्ष्य के संग्रह और राय के निर्माण की कल्पना करती है, लेकिन सवाल यह उठता है कि 'साक्ष्य के संग्रह और उस पर राय के निर्माण' से हमारा क्या मतलब है। क्या साक्ष्य के संग्रह में आवश्यक रूप से यह परिकल्पना की गई है कि जांच अधिकारी को उन गवाहों के बयान दर्ज करने चाहिए जिन्हें अभियोजन मामले को साबित करने के लिए उद्धृत किया जाना है या जांच अधिकारी को विशेषज्ञों की रिपोर्ट प्राप्त

करनी चाहिए जो पुरानी संहिता की धारा 293 के आधार पर साक्ष्य में स्वीकार्य हैं? नूर खान बनाम राजस्थान राज्य (6) में उच्चतम न्यायिक स्तर पर यह प्राधिकृत रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 161 की उपधारा (3) पुलिस अधिकारी को जांच के दौरान उसके द्वारा जांचे गए गवाहों के बयानों को लिखित रूप में कम करने के लिए बाध्य नहीं करती है।

जाँच अधिकारी का यह दायित्व नहीं है कि वह गवाहों के बयानों को लिखित रूप में कम करे-वह आरोप पत्र प्रस्तुत करते समय अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में गवाहों की सूची में केवल उनके नाम शामिल कर सकता है। निश्चित रूप से, यदि इस प्रकार प्रस्तुत आरोप-पत्र मजिस्ट्रेट को अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम बनाता है, तो यह अभिनिर्धारित करने का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है कि इसी प्रकार का आरोप-पत्र अपेक्षित प्रकार की पुलिस रिपोर्ट नहीं होगी यदि गवाहों के बयान यद्यपि धारा 161 (3) के अधीन अभिलिखित किए गए थे, लेकिन या तो परिकल्पित रूप से या अनजाने में रिपोर्ट के साथ संलग्न नहीं किए गए हैं और केवल उसी कारण से मामले की जांच को अपूर्ण माना जाएगा, इस प्रकार अभियुक्त को संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक को देखते हुए जमानत पर रिहाई का दावा करने का अधिकार है, यदि उसकी निरोध अवधि साठ दिनों से अधिक हो गई थी। (15) उपरोक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त यह प्रचार करने में अभी भी कमजोर आधार पर होगा कि रिपोर्ट, जिसमें रसायन विश्लेषक, सीरोलॉजिस्ट, बैलिस्टिक विशेषज्ञ, फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ आदि जैसे विशेषज्ञों की रिपोर्ट शामिल नहीं है, संहिता की धारा 173 की उप-धारा (2) में परिकल्पित एक पूर्ण पुलिस रिपोर्ट नहीं होगी, जो जांच के पूरा होने के बाद ही तैयार और प्रस्तुत की जाती है। जहां तक अन्वेषण अधिकारी के कार्य के अन्वेषण भाग का संबंध है, हमारी राय में यह उस क्षण को पूरा करता है जब उसने संहिता की

धारा 173 की उपधारा (2) में विस्तृत सभी साक्ष्य और तथ्य एकत्र किए थे और इस प्रकार एकत्र किए गए साक्ष्य से वह संतुष्ट है) कि अभियुक्त के विरुद्ध मामला शुरू किया जाना चाहिए। और यदि जांच अधिकारी ने विशेषज्ञ की रिपोर्ट प्राप्त नहीं की थी, जहां तक साक्ष्य एकत्र करने के उसके काम का संबंध है, तो वह उस समय समाप्त हो जाता है जब वह विशेषज्ञ की राय के लिए सामग्री भेजता है और संयोग से उसे गवाह के रूप में उद्धृत करता है यदि वह अपनी गवाही पर भरोसा करता है।

(16) नई संहिता में संहिता की धारा 173 में उपधारा (5) के समावेशन ने धारा 173 की उपधारा (2) में असंशोधित संहिता में परिकल्पित 'पुलिस रिपोर्ट' की सामग्री या अवधारणा को किसी भी प्रकार से परिवर्तित या प्रभावित नहीं किया है और इसलिए, ताम सिंह के मामले (उपर्युक्त) का अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूर्ण बल के साथ लागू होता है। संशोधित संहिता की धारा 173 की उपधारा (5) को शामिल करना इस तथ्य के कारण आवश्यक था कि संशोधित संहिता की धारा 207 के तहत मजिस्ट्रेट पर अतिरिक्त रूप से 'पुलिस रिपोर्ट' और अन्य बातों के साथ-साथ संहिता की धारा 173 की उपधारा (5) में निर्दिष्ट दस्तावेजों और बयानों की प्रतियां अभियुक्त को निःशुल्क उपलब्ध कराने का कर्तव्य डाला गया था। धारा 173 की असंशोधित संहिता की उपधारा (4) में पुलिस को यह कर्तव्य सौंपा गया है। इस तरह के प्रावधानों का उद्देश्य, चाहे कर्तव्य पुलिस पर दिया गया हो या मजिस्ट्रेट पर, केवल यह देखना है कि अभियुक्त के हाथ में बयानों और दस्तावेजों की प्रतियां हैं जो उसके खिलाफ सबूत के रूप में पेश किए जाने वाले थे या संदर्भित किए जाने वाले थे ताकि वह अपने खिलाफ आपत्तिजनक सामग्री के लिए जो भी स्पष्टीकरण या बचाव पेश कर सके। यदि संहिता की धारा 173 की उपधारा (5) में निर्दिष्ट ऐसे कथन और दस्तावेज 'पुलिस रिपोर्ट' के

साथ नहीं जोड़े जाते हैं, तो परिणाम यह होगा कि बाद के स्तर पर यदि उन्हें पेश करने की मांग की जाती है, तो इस तथ्य के अलावा कि ऐसे बयानों और दस्तावेजों की प्रतियां अभियुक्त को उपलब्ध करानी होंगी, यह विशुद्ध रूप से मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार पर होगा कि ऐसे दस्तावेजों और बयानों को पेश करने की अनुमति दी जाए या नहीं और अभियोजन पक्ष, अधिकार के रूप में, उन्हें रिकॉर्ड पर नहीं रख सकता है। इस पहलू के बारे में निर्णय के बाद के भाग में एक उपयुक्त स्थान पर थोड़ा और।

(17) धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक का उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना था कि किसी अभियुक्त को जांच के दौरान साठ दिनों से अधिक समय तक हिरासत में नहीं रखा गया है और उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि जांच पूरी नहीं हुई है और आरोपी के विरुद्ध, जैसा भी मामला हो, जांच या मुकदमा शुरू नहीं किया गया है, तो अभियुक्त को मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर रिहा किया जाना है, क्योंकि साठ दिनों के बाद मजिस्ट्रेट के पास जांच के दौरान उसे न्यायिक हिरासत में भेजने के लिए कोई न्यायशास्त्र शब्द नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यदि मजिस्ट्रेट साठ दिनों की अवधि की समाप्ति के बाद अपराध का कानूनी रूप से संज्ञान नहीं ले सकता है, तो उसके पास आरोपी की रिहाई का आदेश देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है; लेकिन जहां मजिस्ट्रेट कानूनी रूप से अपराध का संज्ञान ले सकता है और जांच या मुकदमे से शुरुआत कर सकता है, तो वह जांच या मुकदमे का सामना करने के लिए आरोपी को विचाराधीन के रूप में हिरासत में लेने की अधिकारिता प्राप्त करता है यदि यह आवश्यक समझा जाता है, और आरोपी को संहिता की धारा 309 के प्रावधानों के अनुसार न्यायिक हिरासत में भेज दिया जा सकता है।

(18) इसके बाद यह न्यायालय के विवेकाधिकार पर होगा कि अभियोजक को इस प्रकार के विशेषज्ञों की रिपोर्ट को साक्ष्य में प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए या नहीं। यदि अदालत अभियोजक को ऐसा करने की अनुमति देती है, तो उसकी एक प्रति अभियुक्त को प्रस्तुत करनी होगी। न्यायालय को संहिता की धारा 91 (जो नीचे पुनः प्रस्तुत की गई है) के तहत यह निर्धारित करना है कि पुलिस अधिकारी के आवेदन पर गवाह से दस्तावेज़ के लिए कॉल करना है या नहीं।

"(1) जब भी कोई न्यायालय या किसी पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी यह समझता है कि इस संहिता के अधीन किसी अन्वेषण, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए ऐसे न्यायालय या अधिकारी द्वारा या उसके समक्ष किसी दस्तावेज या अन्य वस्तु को प्रस्तुत करना आवश्यक या वांछनीय है, तो ऐसा न्यायालय उस व्यक्ति को, जिसके कब्जे या शक्ति में ऐसा दस्तावेज या वस्तु मानी जाती है, समन जारी कर सकता है, या ऐसे अधिकारी को एक लिखित आदेश जारी कर सकता है, जिसमें उससे समन या आदेश में बताए गए समय और स्थान पर उपस्थित होने और उसे पेश करने या पेश करने की अपेक्षा की जाती है।

(2) इस धारा के अधीन केवल किसी दस्तावेज या अन्य वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए अपेक्षित कोई भी व्यक्ति, यह समझा जाएगा कि उसने अनुरोध किया है यदि वह व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के बजाय ऐसे दस्तावेज या वस्तु को प्रस्तुत करने का कारण बनता है।

(3) इस धारा की कोई बात नहीं मानी जाएगीः-(क) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 या बैंकर पुस्तक अधिनियम, 1891 की धारा 123 और 124 को प्रभावित करने के लिए, या (ख) किसी पत्र, पोस्टकार्ड, तार या अन्य दस्तावेज या डाक या तार प्राधिकरण की अभिरक्षा में किसी पार्सल या चीज़ पर लागू करने के लिए।

और संहिता की धारा 91 के प्रावधानों में आगे यह परिकल्पना की गई है कि ऐसे व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है-वह किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से दस्तावेज़ को सीधे न्यायालय में भेज सकता है। न्यायालय के पास संहिता की धारा 311 के तहत अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने की शक्ति भी है यदि इसे न्याय के हित में माना जाता है। तथापि, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, न्यायालय को हमेशा अभियुक्त के हित को संतुलित करना है कि उसे अनुचित रूप से लंबे समय तक कारावास में नहीं रहना चाहिए क्योंकि विधायिका की ओर से उसे अनुचित रूप से सड़े हुए कारावास से मुक्त करने की चिंता संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) के परन्तुक के प्रावधानों से स्पष्ट है। हालाँकि, न्याय के हित को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए और अभियोजन पक्ष के किसी भी सबूत को बंद नहीं किया जाना चाहिए जिसका मामले से महत्वपूर्ण संबंध हो।

(19) वर्णित कारणों से, मेरा मानना है कि किसी अपराध के अन्वेषण को केवल इस कारण से अनिर्णायक नहीं माना जा सकता है कि जांच अधिकारी, जब उसने संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के संदर्भ में मजिस्ट्रेट को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, तब भी विशेषज्ञों की रिपोर्ट का इंतजार कर रहा था या किसी संयोग से, वह कभी भी सावधानीपूर्वक या योजनाबद्ध रूप से पुलिस रिपोर्ट में ऐसे दस्तावेजों या संहिता की धारा 161 के तहत बयानों को जोड़ने में विफल रहा, हालांकि ये उसके पास तब उपलब्ध थे जब उसने मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

(20) परिणामस्वरूप, आपराधिक विविध याचिकाएं सं. 1977 की 5812-एम और 6077-एम और 1978 की 169-एम और 293-एम को खारिज कर दिया गया है और जिसके लिए प्रार्थना की गई जमानत को अस्वीकार कर दिया गया है, जबकि आपराधिक विविध याचिका सं. राज्य द्वारा दायर 1977 का 4766-एम अनुज्ञात है और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया गया है और अभियुक्त-प्रत्यर्थियों के जमानत बांड को रद्द करते हुए, उन्हें तुरंत अभिरक्षा में आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया गया है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

रमनीक कौर

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

फ़रीदाबाद, हरियाणा